Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January-June 2023 4(1), 4214–4219

THE CONCEPT OF MATRIARCHY AND FEMINIST DISCOURSE

मातृसत्ता की संकल्पना और स्त्री विमर्श

Dr. Jitendra Kumar Bhagat [1]

[1] Assistant Professor, Maharaja Agrasen College, Delhi University, India

ABSTRACT

English: Power or authority is a basic structure of society which has been studied in various streams of knowledge. In this context, the question of patriarchy and along with it matriarchy has also been raised. It is believed that the early period of human history began with matriarchy and later the era of patriarchy came, although no evidence has been found in favor of this belief. If seen in this context, then the mistake of considering matrilineal society as matriarchy has been made. If Engels is to be believed, the prehistoric society before the development of civilized society in the world was not only matriarchal, but if seen, matrilinealism existed for the longest time in the process of development of society. After the matrilineal tradition, patriarchy is established. Engels has discussed youth-marriage of prehistoric times. By the time of the Vedic age, the institution of systematic marriage emerged.

Patriarchy also kept developing in different structures according to time. Just as the patriarchal society did not remain the same everywhere over the course of time, similarly the matrilineal society also developed in different forms at different places. For example, the matrilineal system of the Khasi tribals of Meghalaya is different from the matrilineal system of Kerala. There is no caste system among the Khasi tribals, while there is in Kerala. By looking at the female statues found from the excavations of Mohenjodaro and Harappa, historians inferred a matriarchal social system, the remains of which can be found in the matriarchal system of states like Kerala.

Patriarchy is completely established in the medieval society. The Middle Ages fostered feudal ideology, and this structure of society deeply influences patriarchy. In the beginning of the 20th century, the symbol of the mother form of woman started emerging. This symbol was an important aspect of Mahatma Gandhi's ideology. He presented women by linking them with Maa Durga and the image of motherhood. Many feminists saw this glorification as going against women. The freedom movement was described as a religious mission and the glorification of the Durga image and motherhood image of women in it destroyed the identity of 'womanhood'. She was seen more as a mother or goddess than a woman.

After the advent of industrial capitalism, women were excluded from the public sphere and were limited to household chores. Thus, the matriarchal society transformed into a patriarchal family. Production outside the home gradually became more important and the economic power of men began to strengthen and women became dependent on them.

It is believed that feminism is a modern concept that has come to India from the West. It has been proved that feminism is as old as patriarchy. By the end of the prehistoric era, the matriarchal society ends and the patriarchal society starts to emerge. The ancient tradition of feminism also underlines the existence of patriarchy. Patriarchy still believes that a woman is a body. As soon as a woman starts taking her own decisions about her body, patriarchy sees the destruction of the code of conduct. Under sexual ethics, the equation of the body is determined by patriarchal values, so a woman creates a new body discourse to break these values.

Hindi: सत्ता या अधिकार समाज का एक आधारभूत ढाँचा है जिसका अध्ययन तमाम तरह के ज्ञान सरणियों में किया जाता रहा है। इसी संदर्भ में पितृसत्ता और उसके साथ-साथ मातृसत्ता का प्रश्न भी उठता रहा है। ऐसा माना जाता है कि मानव इतिहास का आरंभिक काल मातृसत्ता के साथ शुरू हुआ था और बाद में पितृसत्ता का दौर आया हालाँकि इस धारणा के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं मिला है। इसी संदर्भ में देखें तो मातृवंश को मातृसत्ता समझने की गलती होती रही है। एंगेल्स की माने तो दुनिया में सभ्य समाज के विकास के पहले का प्रागैतिहासिक समाज न सिर्फ मातृमूलक ही था, बल्कि देखा जाए तो समाज के विकास की प्रक्रिया में मातृवंशीयता की अवस्थिति सबसे लंबे समय तक रही। मातृवंशीय परंपरा के बाद पितृसत्ता स्थापित हो जाती है। एंगेल्स ने प्रागैतिहासिककालीन यूथ-विवाह की चर्चा की है। वैदिक युग तक आते-आते व्यवस्थाबद्ध विवाह-संस्था का आविर्भाव होता है।

पितृसत्ता भी समय के अनुरूप अलग अलग ढाँचे में विकसित होता रहा है। जिस प्रकार समय के कालक्रम में पितृसत्तात्मक समाज भी सर्वत्र एक-सा नहीं रहा, उसी प्रकार मातृवंशीय समाज भी अलग अलग स्थान पर अलग अलग रूपों में विकसित हुई। जैसे मेघालय के खासी आदिवासियों की मातृवंशीयता केरल की मातृवंशीयता से भिन्न है। खासी आदिवासियों में जाति

DOI
10.29121/shodhkosh.v4.i1.2023.4882

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2023 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

व्यवस्था नहीं है, जबकि केरल में है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त स्त्री-मूर्तियों को देखकर इतिहासवेत्ताओं ने मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का अनुमान लगाया, जिसके अवशेष केरल जैसे राज्यों की मातृसत्ता प्रणाली में पाए जा सकते हैं।

मध्ययुगीन समाज में पितृसत्ता पूरी तरह स्थापित हो जाती है। मध्ययुग सामंती विचारधारा का पोषक है, और समाज का यह ढाँचा पितृसत्ता को गहराई से प्रभावित करता है। 20वीं सदी के आरंभ में स्त्री के माँ रूप का प्रतीक उभरने लगा। महात्मा गांधी की विचारधारा में यह प्रतीक एक महत्वपूर्ण पक्ष था। उन्होंने स्त्री को माँ दुर्गा और मातृत्व छवि से जोड़कर प्रस्तुत किया। कई नारीवादियों को यह महिमामंडन स्त्री के खिलाफ जाता नजर आया। स्वाधीनता आंदोलन को धार्मिक मिशन बताया गया और उसमें स्त्री की दुर्गा छवि और मातृत्व छवि के महिमामंडन से 'स्त्रीत्व' की अस्मिता नष्ट होती नजर आई। वह औरत से ज्यादा माता या देवी के रूप में देखी जाने लगी।

औद्योगिक पूंजीवाद के आने के बाद सार्वजनिक क्षेत्र से स्त्रियां बाहर कर दी गई और वे घर के काम काज तक सीमित हो गईं। इस प्रकार मातृप्रधान समाज पितृसत्तात्मक परिवार में रूपांतरित हो गया। घर के बाहर का उत्पादन धीरे-धीरे अधिक महत्वपूर्ण हो गया और पुरुषों की आर्थिक सत्ता मजबूत होने लगी और स्त्रियां उनपर निर्भर होती चली गईर।

यह माना जाता है कि स्त्रीवाद एक आधुनिक अवधारणा है, जो भारत में पश्चिम से आयी है। यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्रीवाद उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी पितृसत्ता है। प्रागैतिहासिक युग के अंत तक मातृत्व-सत्तात्मक समाज का समापन और पितृसत्तात्मक समाज का उदय होने लगता है। स्त्रीवाद की प्राचीन परंपरा पितृसत्ता की मौजूदगी को भी रेखांकित करती है। पितृसत्ता आज भी मानता है कि स्त्री एक शरीर है। जैसे ही औरत अपने शरीर का फैसला खुद लेने लगती है, पितृसता को आचार संहिता का ध्वंस होता नजर आता है। यौन-नैतिकता के तहत देह का समीकरण पितृसत्तात्मक मूल्यों से निर्धारित होता है, इसलिए स्त्री इन मूल्यों को तोड़ने के लिए नया देह-विमर्श रचती है।

Keywords: Matrilineal Society, Matriarchal Society, Patriarchal Values, Youth Marriage, Stridhan, Gender Discrimination, Women Liberation, Sexual Freedom, Sexual Morality, मातृवंशीय समाज, मातृसत्तात्मक समाज, पितृसत्तात्मक मूल्य, यूथ-विवाह, स्त्रीधन, लिंग-भेद, स्त्री-मुक्ति, यौन-स्वतंत्रता, यौन-नैतिकता

1. प्रस्तावना

सत्ता और सृष्टि का गहरा रिश्ता रहा है। यहॉ सृष्टि का अर्थ उत्पत्ति के रूप में है, किसी प्रजाति के विकसित होने और वृद्धि करने के संदर्भ में है। इस तरह सृष्टि एक प्राकृतिक गुण है जबकि सत्ता एक सामाजिक व्यवस्था। बात यदि मानव समाज की करें और उसे लैंगिक आधार पर देखें तो पुरूषों की सत्ता इतिहास क्रम में स्पष्ट नजर आता है। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन समय में तो मातृसत्ता ही थी। बाद में धीरे-धीरे वह पितृसत्ता में बदलती गयी। लेकिन इस धारणा के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं मिला है। हां, मातृवंशीय समाज जरूर रहे हैं। मातृवंश को मातृसत्ता नहीं समझना चाहिए। उमा चक्रवर्ती[1] ने भी 'मातृसत्ता' शब्द के स्थान पर 'मातृवंशीयता' शब्द का प्रयोग किया है।

शोभिता जैन ने नातेदारी अध्ययन की दो दृष्टिकोणों का उल्लेख किया है - प्राचीन ग्रंथों पर आधारित दृष्टिकोण और नृशास्त्रीय दृष्टिकोण (वंशक्रम तथा विवाहजन्य संबंध)। इन दृष्टियों के बगैर नातेदारी पद्धतियों को समझना दुष्कर है। बाकोफन (1861, द मदर राइट) ने मातृवंश परंपराक्रम एवं मातृसत्ता को एक ही सिक्के के दो पहलू माना है। जबकि शोभिता जैन ने स्पष्ट किया है कि किसी भी मातृवंश परंपराक्रम मानने वाले समूह में मातृशासन का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दोनों का अंतर इस प्रकार है-

''मातृसत्तात्मक व्यवस्था में वंशक्रम की सदस्यता महिलाओं के माध्यम से तय होती है और साथ में शक्ति तथा सत्ता की बागडोर भी महिलाओं के हाथ में होती है। दूसरी ओर, मातृवंश परंपरा मानने वाले समूहों में यद्यपि वंशक्रम की सदस्यता महिलाओं के माध्यम से तय होती है, सामाजिक नियंत्रण एवं भूमि व अन्य संपत्ति के बारे में निर्णय लेने की शक्ति प्रायः पुरुषों के हाथ में होती है।''[2]

प्रागैतिहासिक भारतीय समाज में जब तक निजी संपत्ति की धारणा का उदय नहीं हुआ था, तब तक वह सार्वजनिक उपयोग के लिए सभी को उपलब्ध थी। ''यह आदिमकालीन भारतीय समाज उत्पादन के साधनों के सामान्य स्वामित्व पर आधारित था। निजी उत्पादन, निजी उपभोग और निजी जायदाद जैसी कोई चीज उस समय तक नहीं थी। हर वस्तु का सामान्य स्वामित्व होता था और वह सामान्य उपभोग के लिए होती थी। कोई भी व्यक्ति मानव के उपभोग की किसी वस्तु को अपनी निजी संपत्ति कहकर नहीं हड़प सकता था।''

एंगेल्स ने 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में सामाजिक विकास के मोर्गेन एवं टाइलर के अध्ययन के आधार पर यह दिखाया था कि किस प्रकार दुनिया में सभ्य समाज के विकास के पहले का प्रागैतिहासिक समाज न सिर्फ मातृमूलक ही था, बल्कि समाज के विकास की प्रक्रिया में वह अब तक का सबसे लंबा काल भी था। ''जैसे-जैसे सम्पत्ति बढ़ती गयी, वैसे-वैसे इसके कारण एक ओर तो परिवार के अन्दर नारी की तुलना में पुरुष का दर्जा ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता गया और, दूसरी ओर, पुरुष के मन में यह इच्छा जोर पकड़ती गयी कि अपनी मजबूत हो गयी स्थिति का फायदा उठाकर उत्तराधिकार की पुरानी प्रथा को उलट दिया जाये, ताकि उसके अपने बच्चे हकदार हो सकें। परन्तु जब तक मातृ-अधिकार के अनुसार वंश चल रहा था, तब तक ऐसा करना असंभव था।''[3]

[1] पितृसत्ता पर एक नोट: उमा चक्रवर्ती: नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे,पृष्ठ 6

[2] भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी - शोभिता जैन, पृ.146

[3] परिवार, निजी सम्पत्ति और समाज की उत्पत्ति, पृ.67

मातृवंशीय परंपरा के बाद पितृसत्ता स्थापित हो जाती है। और यह विवाह-संस्था की मान्यता में हुए मूलभूत परिवर्तन का परिणाम है। एंगेल्स बताते हैं कि -

''बस यह एक सीधा-सादा फैसला काफी था कि आगे चलकर गोत्र के पुरुष सदस्यों के वंशज गोत्र में ही रहेंगे और स्त्रियों के वंशज गोत्र से अलग किये जायेंगे और अपने पिताओं के गोत्रों में शामिल कर दिये जायेंगे। इस प्रकार मातृक वंशानुक्रम तथा मातृक उत्तराधिकार की प्रथा उलट दी गयी और उसके स्थान पर पैतृक वंशानुक्रम तथा पैतृक उत्तराधिकार स्थापित हुआ।''[4]

स्मृतिकाल (200 ई-पू- से 9वीं सदी) के उदय से पूर्व भारतीय समाज में स्वच्छंद संभोग की परंपरा विद्यमान थी, और यह रक्त संबंधों की परवाह भी नहीं करती थी। ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत आदि के अवतरणों में इसका स्पष्ट संकेत मिलता है। रामशरण शर्मा ने लिखा है -

''विवाह प्रथा कायम होने के बाद भी स्वच्छंद मैथुन की पुरानी प्रथा को याद दिलानेवाले कुछ रिवाज स्मृति काल तक चलते रहे जिसके फलस्वरूप स्मृतिकारों को स्वीकृत वैवाहिक संबंधों के बाहर मैथुन से उत्पन्न पुत्रों के लिए प्रावधान करना पड़ा। मनु का वचन है कि पति के अतिरिक्त दूसरे पुरुष के साथ मैथुन के फलस्वरूप यदि किन्हीं स्त्रियों के बच्चे उत्पन्न होते हैं और उनके पिता की पहचान नहीं हो सकती है तो उन्हें गूढ़ोत्पन्न कहा जाता है (मनु IX, 170-81)। स्मृतिकार अविवाहित और विधवा स्त्रियों को बच्चों के लिए भी प्रावधान करते हैं। विधि ग्रंथों (स्मृतियों) में ऐसे बच्चों के चार प्रकार बतलाए गए हैं। ये रिवाज पुराने समय की उस अवस्था के अवशेष थे जब स्त्री-पुरुष के मैथुन पर कोई पाबंदी नहीं थी। इस पाबंदी का विकास पितृसत्तात्मक समाज में एकविवाही पारिवारिक प्रणाली के फलस्वरूप हुआ।''[5]

एंगेल्स ने प्रागैतिहासिककालीन इसी यूथ-विवाह की चर्चा की है। वैदिक युग तक आते-आते विवाह-संस्था का नियमन होता है। लेकिन पिछले युग का अवशेष इस विवाह-प्रणाली में अब भी मौजूद है। वैदिक काल की इसी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए इतिहासकार डी-एन-झा लिखते हैं -

''परिवार के पितृसत्तात्मक स्वरूप के बावजूद ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति परवर्ती कालों की अपेक्षा बहुत अच्छी थी।----मालूम होता है, विवाह नामक संस्था प्रतिष्ठित हो चुकी थी। लेकिन ऋग्वैदिक काल में हमें कुछ कौटुंबिक लैंगिक संबंधों के भी साक्ष्य मिलते हैं। ऋग्वेद के बाद वाले हिस्से में यम-यमी संवाद भाई-बहन के सहवास का संकेत देता है। इस ग्रंथ में अन्य कौटुंबिक लैंगिक संबंधों के उदाहरणों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है, जैसे पिता-पुत्री के बीच, माता-पुत्र के बीच। इन उदाहरणों को मातृवंशिक समाज के अवशेष माना जा सकता है। इन सबसे प्रकट होता है कि इस काल में मातृ-अधिकार पितृ-अधिकार में पूर्णतः विलीन नहीं हुआ था परंतु कुल मिलाकर पितृसत्तात्मक सामाजिक परिवेश को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।''[6]

जिस प्रकार पितृसत्तात्मक समाज भी सर्वत्र एक-सा नहीं होता, उसी तरह मातृवंशीय समाज भी। जैसे मेघालय के खासी आदिवासियों की मातृवंशीयता केरल की मातृवंशीयता से भिन्न है। खासी आदिवासियों में जाति व्यवस्था नहीं है, जबकि केरल में है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त स्त्री-मूर्तियों को देखकर इतिहासवेत्ताओं ने मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का अनुमान लगाया, जिसके अवशेष केरल जैसे राज्यों की मातृसत्ता प्रणाली में पाए जा सकते हैं।

प्राचीन भारत में राज्य की उत्पत्ति के लिए स्त्री और संपत्ति के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया जाता था। पराई स्त्री और संपत्ति के अपहरण को रोकने के लिए दण्ड का प्रावधान था। अनेक धार्मिक ग्रंथों में स्त्री और संपत्ति का उल्लेख एक ही कोटि से हुआ है, इसलिए तय है कि स्त्री को भी संपत्ति के रूप में ही माना जाता था। रामशरण शर्मा के अनुसार-

''वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से समाज में नहीं रह सकती थी और संपत्ति की तरह उधार दी जाती थी। यह व्यक्तिगत संपत्ति पर अवलंबित ठेठ पितृसत्तात्मक समाज की मनोवृत्ति के अनुरूप था। इसी मनोवृत्ति के कारण धर्मशास्त्रें में स्त्री को अचल संपत्ति पर अधिकार नहीं दिया गया था, स्त्रीधन का प्रावधान तो बहुत सीमित प्रकार का था_ इसके अनुसार पत्नी का अधिकार, जवाहरात, आभूषण और भेंट में मिली चीजों के सिवाए किसी पर नहीं होता था।------स्त्रियों को अचल संपत्ति के अधिकार से अलग रखना था, इसलिए वे चल संपत्ति मानी गईं।''[7]

इस प्रकार निजी सम्पत्ति के उदय के साथ-साथ स्त्री भी संपत्ति के रूप में परिभाषित होने लगी। ''स्त्रियों को स्त्रीधन अर्थात् वस्त्रभूषणों के अतिरिक्त और किसी भी संपत्ति पर अधिकार नहीं दिया गया, बल्कि स्वयं स्त्रियां ही संपत्ति मानी जाने लगीं जिन्हें किसी को भी स्थायी या अस्थायी रूप से सौंपा जा सकता था। उनकी आजीवन पराधीनता के पक्ष में जोरदार दलील दी गई है। स्त्रियों की अधिकाधिक परवशता की मांग करने वाला सामाजिक दर्शन निजी संपत्ति की विकसित धारणाओं पर आधारित पितृसत्तात्मक वर्ग-विभाजित समाज में एक स्वाभाविक परिघटना थी।''[8]

भारतीय समाज में प्रगैतिहासिक काल से लेकर सामंती युग तक की तमाम प्रवृत्तियाँ अस्तित्वमान है। उदाहरण के तौर पर - सती प्रथा की घटनाएँ दासयुग और सामंती युग की बदतर स्थिति का नमूना है। दूसरी तरफ देवी के रूप में पूज्य भाव प्रागैतिहासिक मातृसत्तात्मक समाज की देन है। इसके अलावा दहेज-हत्या, संपत्ति का अधिकार, मताधिकार जैसी चीजें आधुनिक पूंजीवादी समाज की देन हैं। स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने के लिये इस

[4] परिवार, निजी सम्पत्ति और समाज की उत्पत्ति, पृ.67-68
[5] रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ.58
[6] डी.एन.झा, पृ.51
[7] रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ.63
[8] प्राचीन भारत, स्वर्णयुग की भ्रामक कल्पना-डी.एन.झा, पृ.174

युग में स्मृतिकारों ने उन्हें जन्म से मृत्यु तक पुरुष के अधीन कर दिया एवं स्त्रियों की सभी स्वतंत्रताओं एवं अधिकारों की समाप्ति कर दी गई। मध्ययुगीन समाज में पितृसत्ता पूरी तरह स्थापित हो जाती है। यह दास-प्रथा और सामंतवाद का सम्मिलित युग है, जब मातृसत्ता के अवसान के साथ स्त्री को पराधीन बनाने वाली शक्तियां स्थापित होने लगती हैं। मनुस्मृति में पहले ही घोषणा की जा चुकी थी कि स्त्री को पिता, पति एवं पुत्र के अधीन होना चाहिए।

मध्ययुग सामंती विचारधारा का पोषक है, और समाज का यह ढाँचा पितृसत्ता को गहराई से प्रभावित करता है। ''सामंती युग में परिवार का स्वरूप तने जैसा होता था, परिवार का मुखिया, सबसे बड़ी आयु का, पिता होता था जो कई बेटों और उनकी पत्नियों और बच्चों पर राज करता था। घर का कामकाज स्त्रियों के पद के अनुरूप उनमें बँटा रहता था: कपड़े धोना, कताई और बुनाई अविवाहित बेटियों का काम था, बच्चे पैदा करने की आयु की पत्नियाँ बच्चे पैदा करतीं, बड़ी उम्र की पत्नियाँ बच्चों की सार-संभाल करती और खाना पकातीं, सबसे बड़ी आयु की पत्नी पर घर के कुशल संचालन की जिम्मेदारी रहती।''[9]

मध्यकालीन युग में स्त्रियों की दशा और भी दयनीय हो गई। ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म के रक्षार्थ स्त्रियों के सतीत्व तथा रक्त की शुद्धता बनाये रखने के लिये नियमों को और भी कठोर बना दिया। विवाह की आयु घट गई, पर्दा-प्रथा का प्रयत्न बढ़ गया एवं सती प्रथा चरम सीमा को प्राप्त हो गई। यह मध्ययुगीन चेतना वर्तमान भारतीय मानसिकता को अब तक प्रभावित करती रही है। मध्य-युग एक हद तक आधुनिक पूंजीवाद के साथ मिलकर वर्तमान भारतीय समाज का एक अंग बना हुआ है।

सन् 1950 के भारतीय संविधान में स्त्रियों को समान नागरिक अधिकार मिल गए। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 में स्पष्ट उल्लेख था- विभाग एक के द्वारा राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद न करेगा।

20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जब स्त्री के माँ रूप का प्रतीक उभरा, तब इसमें महात्मा गांधी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन को धार्मिक मिशन बताकर स्त्री की दुर्गा छवि और मातृत्व छवि को महिमामंडित किया। ''स्त्री की पूजा देवी या माता के रूप में की जाती थी। भारत के प्राचीन धर्मों या मध्यकालीन धार्मिक प्रथाओं में इसका स्रोत चाहे कहीं भी हो, भारत के आधुनिक साहित्य और कलाओं में भारतीय स्त्री की जो धारणा हम पाते हैं उसका यह विशिष्ट वैचारिक रूप पूरी तरह और निश्चित रूप से एक प्रभुत्वशाली मध्यवर्गीय संस्कृति की देन है जो राष्ट्रवाद के युग के साथ पैदा हुई। राष्ट्र के प्रतीक रूप में स्त्री की इस नई धारणा में जो तत्व स्त्रीत्व की प्रमुख विशेषता बन चुके थे उन पर इस विचारधारा ने पौराणिक प्रेरणा की पूरी शक्ति से जोर दिया।''[10] इस निर्मित छवि का दुष्परिणाम यह हुआ कि उससे 'स्त्रीत्व' की अस्मिता नष्ट हो गई। वह औरत से ज्यादा माता या देवी के रूप में देखी जाने लगी। ''वास्तव में स्त्री की देवी या मातावाली छवि ने घर से बाहर की दुनिया में उसकी लैंगिकता (सैक्सुअलिटी) को मिटा ही दिया।''[11]

लेकिन आजादी के बाद स्त्रियों का मोहभंग हुआ। देश की मुक्ति के बाद उनकी मुक्ति का प्रश्न उपेक्षित होने लगा। तब नारी-आंदोलनों ने स्त्री-जागृति के लिए विविध क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभाई। ''एक ओर जहां कामकाजी महिलाओं को पत्नी-माता-शक्ति की छवि का परित्याग कर उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने को प्रेरित किया गया, दूसरी ओर वर्ग-चैतन्य पैदा कर महिलाओं के संगठित होने और उन्हें एकजुट होने के लिए तैयार किया गया और तीसरी तरफ, उन्हें श्रमिक राजनीति में बढ़-चढ़कर भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया।''

आधुनिक चेतना को पूंजीवाद ने गहराई से प्रभावित किया। इससे लिंग-भेद की प्रवृत्ति को और बढ़ावा मिला। इसलिए स्त्री संगठनों ने स्त्री यातना को एक सिरे से पकड़ने का प्रयास आरंभ किया। ''पुत्री-प्रतीक अब अधिक महत्त्वपूर्ण नजर आने लगा क्योंकि स्त्रियों की व्यथा-कथा की खोज उसके बचपन से शुरू हुई। अनेक प्रदर्शनियों, नाटकों, इश्तहारों इत्यादि में समकालीन नारीवादियों ने लड़की के रूप में उनके पैदा होने की लाचारी एवं पीड़ा का श्रृंखलाबद्ध वर्णन किया। उनकी जवानी को लेकर पनपती यौन-उत्पीड़न की फिक्र, विवाहोपरांत 'दूर भेजे जाने' का डर, अकेलापन और विवाह के पश्चात् उनकी निजता की समाप्ति और दूसरी लड़की पैदा होने के बाद इस समूची पीड़ा, भय और परित्याग के दोहराव को रेखांकित किया गया।''

भारतीय समाज में स्त्रियों को नागरिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक आदि अधिकार मिल गये हैं, ये अधिकार स्त्रियों को पुरुषों के समान प्रस्थिति पर लाने के उद्देश्य से किये गये हैं। परंतु क्या इन प्रयत्नों के बावजूद भी स्त्रियों एवं पुरुषों की प्रस्थिति में समानता आ पाई है? व्यवहारतः स्त्रियों एवं पुरुषों में अभी पूरी समानता नहीं है। यह सवाल अब भी अनुत्तरित है कि क्या जैविकीय भिन्नताओं की वजह से स्त्रियों एवं पुरुषों की प्रस्थिति में समानता आयेगी या नहीं?

मार्क्स के विचार प्रत्यक्ष रूप से स्त्रियों को संबोधित नहीं है। एक योजना ढंग से सार्थक पहल एंगेल्स में नजर आती है, जिन्होंने 1884 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में महिला उत्पीड़न को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश की है। उनके अनुसार प्राक् पूंजीवादी समाज में खेत के साथ घर उत्पादन का स्थान था। औद्योगिक पूंजीवाद के आ जाने पर स्त्रियां घरों तक सीमित हो गईं और पुरुष ने सार्वजनिक क्षेत्र को हस्तगत कर लिया। इसी ने मातृप्रधान समाज को पितृसत्तात्मक परिवार में रूपांतरित कर दिया, क्योंकि घर के बाहर का उत्पादन

[9] जर्मेन ग्रीयर, विद्रोही स्त्री, पृ.201
[10] निम्नवर्गीय प्रसंग-शाहिद अमीन, ज्ञानेंद्र पांडेय - पार्थ चटर्जी पृ.68
[11] निम्नवर्गीय प्रसंग-शाहिद अमीन, ज्ञानेंद्र पांडेय - पार्थ चटर्जी पृ.69

अधिकाधिक महत्वपूर्ण हो गया और पुरुषों की आर्थिक सत्ता स्त्रियों की तुलना में कहीं अधिक सुदृढ़ हुई। मार्क्स से पहले विलियम थाम्पसन और जान स्टुअर्ट मिल (1869) के उदारवादी चिन्तन ने नारी-मुक्ति के विचार को पर्याप्त दिशा दी थी। एंगेल्स का यह निष्कर्ष अपने-आप में क्रांतिकारी था कि - ''विवाह में पुरुष की श्रेष्ठता उसकी आर्थिक श्रेष्ठता का सीधा परिणाम है। आर्थिक श्रेष्ठता समाप्त हो जाने पर वैवाहिक जीवन में पुरुष की श्रेष्ठता भी समाप्त हो जायेगी।'' [12]

ध्यातव्य है कि 1884 में अपनी पुस्तक ' परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' लिखने से पूर्व एंगेल्स यह मानते थे कि मजदूरी करने वाली औरतों से रोजगार उनका औरतपन छीन लेता है, 1884 तक आते-आते उनका निष्कर्ष था - 'नारी की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि सभी नारियों को सार्वजनिक उद्यम में ले आना होगा।'[13]

यह माना जाता है कि स्त्रीवाद एक आधुनिक अवधारणा है, जो भारत में पश्चिम से आयी है। यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्रीवाद उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी पितृसत्ता है। प्रागैतिहासिक युग के अंत तक मातृत्व-सत्तात्मक समाज का समापन और पितृसत्तात्मक समाज का उदय होने लगता है। बौद्ध साहित्य 'थेरीगाथाओं' में वृद्ध बौद्ध भिक्षुणियों (स्थतिराओं) द्वारा गाए गीतों में सामाजिक बंधनों से अपनी मुक्ति तथा स्त्री-पुरुष समानता का भाव मिलता है। इनका समय छठी शताब्दी ईसापूर्व होना चाहिए। इन भौतिक गीतों को बाद में लिपिबद्ध किया गया। ये रचनाएं स्त्रीवादी लेखन के सबसे पुराने नमूने हैं।

स्त्रीवाद की प्राचीन परंपरा पितृसत्ता की मौजूदगी को भी रेखांकित करती है। बीसवीं सदी के आठवें और नवें दशक में स्त्रीवाद सारी दुनिया में बहुत लोकप्रिय हुआ, लेकिन आज इनकी धार में पैनापन नजर नहीं आता। दरअसल स्त्रीमुक्ति की मुहिम का एक बड़ा अवरोध यह है कि वह विचार प्रेरित कम है, भावना-प्रेरित अधिक। उसका वैचारिक आधार कमजोर है और दिशा भी स्पष्ट नहीं है। उसका ध्यान पुरुष वर्चस्व के विरोध तक ही सीमित रहकर संकीर्ण हो गया है। उसकी समस्याएँ ज्वलंत एवं जटिल अवश्य है, पर समाधान सरकार हस्तक्षेप पर निर्भर है। जैसे दहेज प्रथा, सती प्रथा, स्त्रियों का दमन-उत्पीड़न या कानूनी एवं यौन शोषण, विवाह-तलाक, भेदभाव, स्त्रियों के प्रति हिंसक रवैया, संपत्ति के अधिकार और उत्तराधिकार के मामले में वे वर्ग और जाति की संरचना को भुला देती है। इस मूल ढाँचे को बदले बिना स्त्री-मुक्ति का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता।

आदिम युग में स्त्रियों के पास यौन-स्वतंत्रता अधिक थी, लेकिन निजी सम्पत्ति के उदय के बाद वह पितृसत्ता के अधीन हो जाती हैं। एंगेल्स उस विरोधाभास का उल्लेख करते हैं कि पुरुष अपनी यौन-स्वतंत्रता को अब तक कायम रखने में सफल हुए हैं, जबकि स्त्रियों पर प्रतिबंध लग जाता है-

''स्त्रियों से तो यूथ-विवाह के काल की यौन-स्वतंत्रता अधिकाधिक छिनती जाती है, पर पुरुषों से नहीं छिनती। पुरुषों के लिए तो, वास्तव में, आज भी यूथ-विवाह प्रचलित हैं। नारी के लिए जो बात एक ऐसा अपराध समझी जाती है, जिसका भयानक सामाजिक और कानूनी परिणाम होता है, वही पुरुष के लिए एक सम्मानप्रद बात, या अधिक से अधिक एक मामूली-सा नैतिक धब्बा समझा जाता है, जिसे वह खुशी से सहन करता है।''[14]

पितृसत्ता आज भी मानता है कि स्त्री एक शरीर है। उसका शरीर सेवा और सेक्स का आधार है। सेवा एवं सेक्स, इन दोनों मुद्दों पर स्वेच्छापूर्ण धारणा लागू हुई पुरुष व्यवस्था स्त्री को अपने नियंत्रण में रखती है, क्योंकि जैसे ही औरत अपने शरीर का फैसला खुद लेने लगती है, पितृसता को आचार संहिता का ध्वंस होता नजर आता है। ''समाज में स्त्री, स्त्री होने के कारण ही शोषित होती है, सारी वर्जनाएं देह से ही जुड़ी हुई हैं। तो क्या स्त्री मुक्ति को देह की मुक्ति से जोड़ा जा सकता है? देह का अर्थ मात्र सैक्स नहीं है। देह एक महत्त्वपूर्ण चीज है।'' [15]

जाहिर है, यौन-नैतिकता के तहत देह का समीकरण पितृसत्तात्मक मूल्यों से निर्धारित होता है, इसलिए स्त्री इन मूल्यों को तोड़ने के लिए नया देह-विमर्श रचती है।

2. निष्कर्ष

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि मातृवंशीय परंपरा निजी संपत्ति के उदय के साथ समाप्त हो जाती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री को यौन-दास और संपत्ति में रूपांतरित कर दिया जाता है। यौन नैतिकता और आदर्शपरक संहिताओं से स्त्री को अधिकाधिक नियंत्रित किया जाता है। राष्ट्रवादी चिन्तक मातृत्व और पत्नीत्व छवि पर बल देते हैं, साम्प्रदायिक चिन्तनधारा और दलित चिन्तन धारा में स्त्री अस्मिता को नष्ट कर दिया जाता है। नारीवाद स्त्री-उत्पीड़न के खिलाफ और स्त्री-मुक्ति के पक्ष में गतिशील होता है पर अपने अंतर्विरोधों के कारण पूर्ण क्रांति करने में असफल रहता है। मार्क्सवाद के तहत स्त्री के श्रम और वर्गीय आधार का विश्लेषण होता है। इस प्रकार मौजूदा स्त्री विमर्श में दासता, उत्पीड़न, यौनिकता, अस्मिता और मुक्ति के सभी पहलुओं पर विचार करने का आधार बनता है।

[12] परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, पृ.100
[13] हाइडी हार्टमान, संधान-1, पृ.114
[14] एंगेल्स, परिवार, निजी सम्पत्ति और समाज की उत्पत्ति, पृ.91
[15] निवेदिता, हंस सितंबर, 2005, पृ.48

संदर्भ ग्रंथ

नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे,संपादन : साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, प्रकाशन : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 2001, पृष्ठ 6

शोभिता जैन, भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी/रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं दिल्ली;92द्ध, प्रथम-1996

फ्रेडरिक एंगेल्स, परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस ;प्रां.द्ध लिमिटेड, नई दिल्ली-55, प्रथम सं.1974, द्वितीय सं. 1986

रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशलय, दिल्ली -7 पाँचवा संस्करण-1992, पुर्नमुद्रण-2003

द्विजेन्द्र नारायण झा, प्राचीन भारत, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल ग्रंथशिल्पी, प्रथम-2000

जर्मेन ग्रीयर, विद्रोही स्त्री, अनुवाद-मधु बी.जोशी, राजकमल, प्रथम सं. 2001

निम्नवर्गीय प्रसंग-शाहिद अमीन, ज्ञानेंन्द्र पांडेय - पार्थ चटर्जी

हाइडी हार्टमान, संधान-1

निवेदिता, हंस सितंबर, 2005